बिसदपंचवंचासचारणाणं अट्ठविहचारणेहिंतो एयंतेण पुधत्ताभावादो च । एदेसिं चारण-जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

कधं चारणाणं अट्ठसंखाणियमो ? ण, इदरेसिं चारणाणमेत्थंतब्भावादो । तं जहा- चिक्खल्ल-छार-गोवर-भुसादिचारणाणं जंघचारणेसु अंतब्भावो, भूमीदो चिक्खल्लादीणं कधंचि भेदाभावादो । कुंथुद्देही-मक्कुण-पिपीलियादिचारणाणं फलचारणेसु अंतब्भावो, तसजीवपरिहरणकुसलत्तं पडि भेदाभावादो । पत्तंकुर-त्तण-पवालादिचारणाणं पुप्फचारणेसु अंतब्भावो, हरिदकायपरिहरणकुसलत्तेण साहम्मादो । ओस-करवास-धूमरी-हिमादिचारणाणं जलचारणेसु अंतब्भावो, आउक्काइयजीवपरिहरणकुसलत्तं पडि साहम्मदंसणादो । धूमग्गि-वाद-मेहादिचारणाणं तंतु-सेडिचारणेसु अंतब्भावो, अणुलोम-विलोमगमणेसु जीवपीडाअकरणसत्तिसंजुत्तादो । एवमण्णेसिं पि चारणाणमेत्थेव अंतब्भावो दट्ठव्वो ।

णमो पण्णसमणाणं ।। १८ ।।

....

नहीं है, तथा दो सौ पचपन चारण आठ प्रकार चारणोंसे एकान्ततः पृथक् भी नहीं हैं ।

इन चारणजिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका - चारणोंकी आठ संख्याका नियम कैसे बनता है ?

समाधान - नहीं, अन्य चारणोंका इनमें अन्तर्भाव होनेसे उक्त संख्याका नियम बन जाता है । वह इस प्रकारसे-कीचड, भस्म, गोवर और भूसे आदि परसे गमन करनेवालोंका जंघाचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, भूमिसे कीचड आदिमें कथंचित् अभेद है । कुंथु जीव, उद्देहीजीव, मत्कुण और पिपीलिका आदि परसे संचार करनेवालोंका फलचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, इनमें त्रस जीवोंके परिहारकी कुशलताकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है । पत्र, अंकुर, तृण और प्रवाल आदि परसे संचार करनेवालोंका पुष्पचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, हरितकाय जीवोंके परिहारकी कुशलताकी अपेक्षा इनमें समानता हैं । ओस, ओला, कुहरा और बर्फ आदि पर गमन करनेवाले चारणोंका जलचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, इनमें जलकायिक जीवोंके परिहारकी कुशलताके प्रति समानता देखी जाती है । धूम, अग्नि, वायु और मेघ आदिके आश्रयसे चलनेवाले चारणोंका तन्तुश्रेणीचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, वे अनुलोम और प्रतिलोम गमन करनेमें जीवोंको पीडा न करनेकी शक्तिसे संयुक्त हैं । इस प्रकार अन्य चारणोंका भी इनमें ही अन्तर्भाव समझना चाहिये ।

प्रज्ञाश्रवणोंको नमस्कार हो ।। ९ ।।

औत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणमिकी चेति चतुर्विधा प्रज्ञा । तत्थ जम्मंतरे चउव्विहणिम्मलमदिबलेण विणएणावहारिददुबालसंगस्स देवेसुप्पज्जिय मणुस्सेसु अविणट्ठसंसकारेणुप्पण्णस्स एत्थ भवम्मि पढण-सुणण-पुच्छणवावारविरहियस्स पण्णा अउप्पत्तिया णाम । उत्तं च -

विणएण सुदमधीदं किह वि पमादेण होदि विस्सरिदं ।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आहवदि ॥ २२ ॥

एसो उप्पत्तिण्णसमणो २२४/२ छम्मासोपवासगिलाणो वि तब्बुद्धिमाहप्पजाणावणट्ठं पुच्छावावदचोद्दसपुव्विस्स वि उत्तरबाहओ । विणएण दुवालसंगाइं पढंतस्सुप्पण्णा पण्णा वेणइया णाम, परोवदेसेण जादपण्णा वा । तवच्छरणबलेण गुरुवदेसणिरपेक्खेणुप्पण्णपण्णा कम्मजा णाम, ओसहसेवाबलेणुप्पण्णपण्णा वा । सग-सगजादिविसेसेण समुप्पण्णपण्णा पारिणामिया णाम[१] ।

....

औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी इस प्रकार प्रज्ञा चार प्रकार है । उनमें जन्मान्तरमें चार प्रकारकी निर्मल बुद्धिके बलसे विनयपूर्वक बारह अंगोंका अवधारण करके देवोंमें उत्पन्न होकर पश्चात् अविनष्ट संस्कारके साथ मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर इस भवमें पढने, सुनने व पूछने आदिके व्यापारसे रहित जीवकी प्रज्ञा औत्पत्तिकी कहलाती है । कहा भी है -

विनयसे अधीत श्रुतज्ञान यदि किसी प्रकार प्रमादसे विस्मृत हो जाता है तो उसे (औत्पत्तिकी प्रज्ञा) पर भवमें उपस्थित करती है और केवलज्ञानको बुलाती है ॥२२॥

यह औत्पत्तिप्रज्ञाश्रमण छह मासके उपवाससे कृश होता हुआ भी उस बुद्धिके माहात्म्यको प्रकट करनेके लिये पूछने रूप क्रियामें प्रवृत्त हुए चौदपूर्वीको भी उत्तर देता है । विनयसे बारह अंगोंको पढनेवालेके उत्पन्न हुई प्रज्ञाका नाम वैनयिक है । अथवा परोपदेशसे उत्पन्न बुद्धि भी वैनयिक कहलाती है । गुरुके उपदेशके विना तपश्चरणके बलसे उत्पन्न बुद्धि कर्मजा है । अथवा औषधसेवाके बलसे उत्पन्न बुद्धि भी कर्मजा है । अपनी अपनी जातिविशेषसे उत्पन्न बुद्धि पारिणामिका कही जाती है ।

....

१ पगडीए सुदणाणावरणाए वीरियंतरायाए । उक्कस्सक्खउवसमे उप्पज्जइ पण्णसमणद्धी ॥ पण्णासमणद्धिजुदो चोद्दसपुव्वीसु विसयसुहुमत्तं । सव्वं हि सुदं जाणदि अकअज्झअणो वि णियमेणं ॥ भासंति तस्स बुद्धी पण्णासमणद्धि सा च चउभेदा । अउपत्तिअ-पमिणामिय वइणइकी कम्मजा णेया ॥ अउपत्तिकी भवंतरसुदविणएणं समुल्लसिदभावा । णिय-णियजादिविसेसे उप्पण्णा पारिणामिकी णामा ॥ वइणइकी विणएणं उप्पज्जदि बारसंगसुदजोग्गं । उवदेसेण विणा तवविसेसलाहेण कम्मजा तुरिमा ॥ ति. प. ४, १०१७-१०२१.

उसहसेणादीणं तित्थयरवयणविणिग्गयबीजपदट्ठावहारयाणं पण्णाए कत्थं-तब्भावो ? पारिणामियाए, विणय-उप्पत्ति-कम्मेहि विणा उप्पत्तीदो । पारिणामिय-उप्पत्तियाणं को विसेसो ? आदिविसेसजणिदकम्मक्खओवसमुप्पण्णा पारिणामिया, जम्मंतरविणयजणिदसंसकारसमुप्पण्णा अउप्पत्तिया त्ति अत्थि विसेसो ? एदेसु पण्णसमणेसु केसिं गहणं ? चदुण्हं पि गहणं । प्रज्ञा एव श्रवणं येषां ते प्रज्ञाश्रवणाः । तदो ण वेणइयपण्णसमणाणं गहणमिदि ? ण, अदिट्ठ-अस्सुदेसु अट्ठेसु णाणुप्पायणजोगत्तं पण्णा णाम, तिस्से सव्वत्थ उवलंभादो । गुरूवदेसेणावगयचोद्दसपुव्वे कहमस्सुदत्थावगमो ? ण, अणभिलप्पत्थविसयणाणुप्पायणसत्तीए तत्थाभावे सयलसुद-

....

शंका - तीर्थंकरके मुखसे निकले हुए बीजपदोंके अर्थका निश्चय करनेवाले वृषभसेनादि गणधरोंकी प्रज्ञाका कहां अन्तर्भाव होता है ?

समाधान - उसका पारिणामिक प्रज्ञामें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, वह विनय, उत्पत्ति और कर्मके विना उत्पन्न होती है ।

शंका - पारिणामिक और औत्पत्तिक प्रज्ञामें क्या भेद है ?

समाधान - जातिविशेषमें उत्पन्न कर्मक्षयोपशमसे आविर्भूत हुई प्रज्ञा पारिणामिक है, और जन्मान्तरमें विनयजनित संस्कारसे उत्पन्न प्रज्ञा औत्पत्तिकी है; यह दोनोंमें भेद है ।

शंका - इन प्रज्ञाश्रवणोंमें यहां किनका ग्रहण है ?

समाधान - चारों ही प्रज्ञाश्रमणोंका ग्रहण है, क्योंकि, 'प्रज्ञा ही है श्रवण जिनका वे प्रज्ञाश्रवण हैं' ऐसी निरुक्ति है ।

शंका - तो फिर वैनयिक प्रज्ञाश्रवणोंका ग्रहण नहीं हो सकेगा ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, अदृष्ट और अश्रुत अर्थोंमें ज्ञानोत्पादनकी योग्यताका नाम प्रज्ञा है, सो वह सर्वत्र पायी जाती है ।

शंका - गुरुके उपदेशसे चौदह पूर्वोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले प्रज्ञाश्रवणके अश्रुत अर्थका ज्ञान कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, उसमें अवक्तव्य पदार्थ विषयक ज्ञानके उत्पादनकी

णाणुप्पत्तिविरोहादो । असंजदाणं ण पण्णसमणाणं गहणं, जिणसद्दाणुउत्तीदो । एदेसिं पण्णसमणजिणाणं णमो । पण्णाए णाणस्स य को विसेसा ? णाणहेदुजीवसत्ती गरूवए-सणिरवेक्खा पण्णा णाम, तक्कारियं णाणं; तदो अत्थि भेदो ।

णमो आगासगामीणं ।। १९ ।।

आगासे जहिच्छाए गच्छंता इच्छिदपदेसं माणुसुत्तरपव्वयावरुद्धं आगासगामिणो[१] त्ति घेत्तव्वा । देव-विज्जाहराणं ण ग्गहणं, जिणसद्दाणुउत्तीदो । आगासचारणाणमागासगामीणं च को विसेसो ? उच्चदेचरणं चारित्तं संजमो पावकिरियाणिरोहो त्ति एयट्ठो, तम्हि कुसलो णिउणो चारणो । तवविसेसेण जणिदआगासट्ठियजीवपरिहरणकुसलत्तणेण सहिदो

....

शक्तिका अभाव होनेपर समस्त श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका विरोध होगा ।

यहां असंयत प्रज्ञाश्रवणोंका ग्रहण नहीं है, क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्ति आती है । इन प्रज्ञाश्रवण जिनोंको नमस्कार हो ।

शंका - प्रज्ञा और ज्ञानके बीच क्या भेद है ?

समाधान - गुरुके उपदेशसे निरपेक्ष ज्ञानकी हेतुभूत जीवकी शक्तिका नाम प्रज्ञा है, और उसका कार्य ज्ञान है; इस कारण दोनोंमें भेद है ।

आकाशगामी जिनोंको नमस्कार हो ।। १९ ।।

आकाशमें इच्छानुसार मानुषोत्तर पर्वतसे घिरे हुए इच्छित प्रदेशमें गमन करनेवाले आकाशगामी हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये । यहां देव व विद्याधरोंका ग्रहण नहीं है, क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्ति है ।

शंका - आकाशचारण और आकाशगामीके क्या भेद है ?

समाधान - इसका उत्तर कहते हैं - चरण, चारित्र, संयम व पापक्रियानिरोध इनका एक ही अर्थ है । इसमें जो कुशल अर्थात् निपुण है वह चारण कहलाता है । तपविशेषसे उत्पन्न हुई आकाशस्थित जीवोंके परिहारकी कुशलतासे जो सहित

....

१ दुविहा किरियारिद्धी णहबलगामित्त चारणत्तेहि । उड्ढीओ आसीणो काउस्सग्गेण इदरेण ।। गच्छेदि जीए एसा रिद्धी गयणगामिणी णाम । ति. प. ४, १०३३-१०३४. पर्यंकावस्था निषण्णा वा कायोत्सर्गशरीरा वा पदोद्धारनिक्षेपणविधिमंतरेणाकाशगमनकुशला आकाशगामिनः । त. रा. ३, ३६, २.

आगासचारणो । आगासगमणमेत्तजुत्तो आगासगामी । आगासगामित्तादो जीववधपरिहरण-कुसलत्तणेण विसेसिदआगासगामित्तस्स विसेसुवलंभादो अत्थि विसेसो । एदेसिं तवोबलेण आगासगामीणं जिणाणं णमो त्ति उत्तं होदि ।

णमो आसीविसाणं ।। २० ।।

अविद्यमानस्यार्थस्य आशंसनमाशीः, आशीर्विषं ते आशीर्विषाः । जेसिं जं पडि मरिहि त्ति वयणं णिप्पडिदं तं मारेदि, भिक्खं भमेत्ति वयणं भिक्खं भमावेदि, सीसं छिज्जउ त्ति वयणं सीसं छिंददि, ते आसीविसा[1] णाम समणा । कथं वयणस्स विससण्णा ? विसमिव विसमिदि उवयारादो । आसी अविसममियं जेंसि ते आसीविसा । जेसिं वयणं थावर-जंगमविसपूरिदजीवे पडुच्च 'णिव्विसा होंतु' त्ति णिस्सरिदं ते जीवावेदि, वाहिवेयण-दालिद्दादि-

....

है वह आकाशचारण है । आकाशमें गमन करने मात्रसे संयुक्त आकाशगामी कहलाता है । सामान्य आकाशगामित्वकी अपेक्षा जीवोंके वधपरिहारकी कुशलतासे विशेषित आकाशगामित्वके विशेषता पायी जानेसे दोनोंमें भेद है । तपके बलसे आकाशमें गमन करनेवाले इन जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

आशीर्विष जिनोंको नमस्कार हो ॥ २० ॥

अविद्यमान अर्थकी इच्छाका नाम आशिष् है, आशिष् है विष जिनका वे आशिर्विष कहे जाते है । 'मर जाओ' इस प्रकार जिसके प्रति निकला हुआ जिनका वचन उसके मारने में निमित्त होता है, 'भिक्षाके लिए भ्रमण करो' ऐसा वचन भिक्षार्थ भ्रमण करनेमें निमित्त है, 'शिरका छेद हो' ऐसा वचन शिरके छेदनेमें निमित्त होता है, वे आशीर्विष नामक साधु हैं ।

शंका - वचनके विष संज्ञा कैसे सम्भव है ?

समाधान - विषके समान विष है, इस प्रकार उपचारसे वचनको विष संज्ञा प्राप्त है ।

आशिष है अविष अर्थात् अमृत जिनका वे आशीर्विष हैं । स्थावर अथवा जंगम विषसे पूरित जीवोंके प्रति 'निर्विष हों' इस प्रकार निकला हुआ जिनका वचन उन्हें

....

१ मर इदि भणिदे जीओ मरेइ सहस त्ति जीए सत्तीए । दुक्खरतवजदमुणिणा आसीविसणामरिद्धी सा ।। ति. प. ४-१०७८. प्रकृष्टतपोबला यतयो यं ब्रुवते म्रियस्वेति स तत्क्षण एव महाविषपरीतो म्रियते ते आस्यविषाः । त. रा. ३, ३[illegible], २. आसी दाढा तग्गय सहाविमाऽऽसीविसा दुविहभेया । ते कम्म-जाइभेएण णेगहा चउव्विहविकप्पा ।। प्रवचनसारोद्धार १५०१. विशे. भा. ७९४.

विलयं पडुच्च णिप्पडिदं संतं तं तं कज्जं करेदि ते वि आसीविसा[1] त्ति उत्तं होदि। तवोबलेण एवंविहसत्तिसंजुत्तवयणा होदूण जे जीवाणं णिग्गहाणुग्गहं ण कुणंति, ते आसीविसा त्ति घेत्तव्वा। कुदो ? जिणाणुउत्तीदो। ण च णिग्गहाणुग्गहेहि संदरिसिदरोस-तोसाणं जिणत्तमत्थि, विरोहादो। एदेसिं सुहासुहलद्धिसहियाणमासीविसाणं जिणाणं णिसुढिय महिवीढणिवदिदो किदियम्मं करेमि त्ति उत्तं होदि।

णमो दिट्ठिविसाणं ।। २१ ।।

दृष्टिरिति चक्षुर्मनसोर्ग्रहणं, तत्रोभयत्र दृष्टिशब्दप्रवृत्तिदर्शनात्। तत्साहचर्यात्कर्म्मणोऽ-पि। रुट्ठो जदि जोएदि चिंतेदि किरियं करेदि वा 'मारेमि' त्ति तो मारेदि, अण्णंपि असुह-कम्मं संरंभपुव्वावलोयणेण कुणमाणो दिट्ठिविसो[2] णाम। एवं दिट्ठिअमियाणं[3] पि जाणि-

....

जिलाता है, व्याधिवेदना और दारिद्रया आदिके विनाश हेतु निकला हुआ जिनका वचन उस उस कार्यको करता है, वे भी अशीर्विष हैं, यह सूत्रका अभिप्राय है। तपके प्रभावसे जो इस प्रकारके शक्तियुक्त वचनोंसे संयुक्त हो करके जीवोंके निग्रह व अनुग्रहको नहीं करते हैं वे आशिर्विष हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्ति है। और निग्रह व अनुग्रह द्वारा क्रमशः क्रोध व हर्षको दिखलानेवालोंके जिनत्व सम्भव नहीं है, क्योंकि, विरोध है। इन शुभ व अशुभ लब्धिसहित आशीर्विष जिनोंको नत होता हुआ पृथिवीतलपर गिरकर वन्दना करता हूं, यह कहनेका तात्पर्य है।

दृष्टिविष जिनोंको नमस्कार हो ।। २१ ।।

दृष्टि शब्दसे यहां चक्षु और मनका ग्रहण है, क्योंकि, उन दोनोंमें दृष्टि शब्दकी प्रवृत्ति देखी जाती है। उसकी सहचरतासे क्रियाका भी ग्रहण है। रुष्ट होकर वह यदि 'मारता हूं', इस प्रकार देखता है, सोचता है व क्रिया करता है तो मारता है, तथा क्रोधपूर्वक अवलोकनसे अन्य भी अशुभ कार्यको करनेवाला दृष्टिविष कहलाता है।

....

१ तित्तादिविविहमण्णं विसजुत्तं जीए वयणमेत्तेणं। पावेदि णिव्विसत्तं सा रिद्धी वयणणिव्विसा णामा ।। अहवा बहुवाहीहिं परिभूदा झत्ति होंति णीरोगा। सोदुं वयणं जीए सा रिद्धी वयणणिव्विसा णामा ।। ति. प. ४-१०७४-१०७५. उग्रविषसंपृक्तोऽप्याहारो येषामास्यगतो निर्विषीभवति यदीयास्यविनिर्गतवचः श्रवणाद्वा महाविषपरीता अपि निर्विषीभवंति ते आस्याविषाः। त. रा. ३, ३६, २.

२ जीए जीओ दिट्ठो महासिणा रोसभरिदहिदएण। अहिदट्ठं व मरिज्जदि दिट्ठिविसा णास सा रिद्धी ।। ति. प. २-१०७९. उत्कृष्टतपसो यतयः क्रुद्धा यमीक्षन्ते स तदैवोग्रविषपरीतो म्रियते दृष्टिविषा। त. रा. ३, ३६, २.

३ रोग-विसेहिं पहदा दिट्ठीए जीए झत्ति पावंति। णीरोग-णिव्विसत्तं सा भणिदा दिट्ठिणिव्विसा रिद्धी ।। ति. प. ४-१०७६. येषामालोकनमात्रादेवातितीव्रविषदूषिता अपि संतः विगतिविषा भवंति ते दृष्टिविषाः। त. रा. ३, ३६, २.

दूण लक्खणं वत्तव्वं । जिणाणमिदि अणुवट्टदे, अण्णहा दिट्ठिविसाणं सप्पाणं पि णमोक्कारप्पसंगादो । एदेसिं सुहासुहलद्धिजुत्ताणं तोस-रोसुम्मुक्काणं छव्विहाणं पि दिट्ठिविसाणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

णमो उग्गतवाणं ।। २२ ।।

उग्गतवा दुविहा उग्गुग्गतवा अवट्ठिदुग्गतवा चेदि । तत्थ जो एक्कोववासं काऊण पारिय दो उववासे करेदि, पुणरवि पारिय तिण्णि उववासे करेदि । एवमेगुत्तरवड्ढीए जाव जीविदंतं तिगुत्तिगुत्तो होदूण उववासे करेंतओ उग्गुग्गतवो[1] णाम । एदस्सुववास-पारणाणयणे सुत्तं -

उत्तरगुणिते तु धने पुनरप्यष्ठा हते त्रिगुणमादिम् । २२३/६
उत्तरविशेषतं वर्गितं च योज्यानयेन्मूलम् ।। २३ ।।

....

इसी प्रकार दृष्टि-अमृतोंका भी लक्षण जानकर कहना चाहिये । 'जिनोंको' इसकी अनुवृत्ति आती है, क्योंकि, इसके विना दृष्टिविष सर्पोंको भी नमस्कार करनेका प्रसंग आता है । इन शुभ व अशुभ लब्धिसे युक्त तथा हर्ष व क्रोधसे रहित छह प्रकारके ही दृष्टिविष जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है ।

उग्रतप जिनोंको नमस्कार हो ।। २२ ।।

उग्रतप ऋद्धि धारक दो प्रकारके होते हैं - उग्रोग्रतप ऋद्धि धारक और अवस्थित उग्रतप ऋद्धि धारक । उनमें जो एक उपवासको करके पारणा कर दो उपवास करता है, पश्चात् फिर पारणा कर तीन उपवास करता है । इस प्रकार एक अधिक वृद्धिके साथ जीवन पर्यन्त तीन गुप्तियोंसे रक्षित होकर उपवास करनेवाला उग्रोग्रतप ऋद्धिका धारक है । इसके उपवास और पारणाओंको लानेके लिये सूत्र -

विशेषार्थ - इन तीन करणसूत्रोंका पाठ कुछ अशुद्ध प्रतीत होता है जिससे उनका ठीक अर्थ नहीं बैठाया जा सका । किन्तु उनमें जिस गणितकी विवक्षा है वह स्वष्ट

....

१ उग्गतवा दो भेदा उग्गोग्ग-अवट्ठिदुग्गतवणामा ।। दिक्खोववासमादिं कादूणं एक्काहिएक्कपचएणं । आमरणंतं जवणं सा होदि उग्गोग्गतवरिद्धी ।। ति. प. १०५०-१०५१

आदिं त्रिगुणं मूलादपास्य शेषं चएन हतलब्धम् ।
सैकं दलितं च पदं शेषं तु धनं विनिर्दिष्टम् ॥ २४ ॥
मिश्रधने अष्टगुणे त्रिरूपवर्गेण संयुते मूलम् ।
मूलोर्ध्दं च पदंशे शेषं तु धनं विनिर्दिष्टम् ॥ २५ ॥

एदेहि दोहि सुत्तेहि पदमाणिय धणम्मि सोहिदे उववासदिवसा । पदमेत्ताओ पारणाओ । एवं संते छम्मासेहिंतो वड्ढिमा उववासा होंति । तदो णेदं घडदि त्ति ? ण एस दोसो, घादाउआणं मुणीणं छम्मासोववासणियमब्भुवगमादो, णाघादाउआणं, तेसिमकाले

....

है । गोम्मटसार जीवकाण्डकी टीका (पृ. १२० आदि) में उल्लिखित करणसूत्रोंके अनुसार उपवास और पारणाके दिनोंकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती हैं -

मान लीजिए कि एक उग्रोग्र तपस्वी प्रतिपदासे प्रारम्भ कर एकोत्तर वृद्धि क्रमसे चतुर्दशी तक निम्न प्रकारसे उपवास (उ) व पारणा (पा) करता है -

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
उ	पा	उ	उ	पा	उ	उ	उ	पा	उ	उ	उ	उ	पा
१		२			३				४				

इसका सर्वधन या पदधन 'मुह-भूमिजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि' इस सूत्रके अनुसार हुआ-

[(२+५) ÷ २] X ४ = १४ पद धन या सर्वधन ।

इसमें पदसंख्या अर्थात् कितने वार उपवास और पारणायें हुई इसकी गणना 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहदे रूवसंजुदे ठाणे' इस सूत्रके अनुसार हुई -

(५-२)X१+१=४ पद ।

अब धवलाकारके अनुसार धनमेंसे पदकी संख्या घटानेपर १४-४=१० उपवास दिवस हुए, और पदमात्र अर्थात् ४ पारणादिन ।

इन दो सूत्रोंसे पदको लेकर धनमेंसे कम करनेपर उपवासदिन होते हैं । पारणाएं पद प्रमाण होती हैं ।

शंका - ऐसा होनेपर छह मासोंमें अधिक उपवास हो जाते हैं । इस कारण यह घटित नहीं होता ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, घातायुष्क मुनियोंके छह मासोंके उपवासका नियम स्वीकार किया है, अघातायुष्क मुनियोंके नहीं; क्योंकि, उनका अकालमें

मरणाभावादो । अघादाउआ वि छम्मासोववासा चेव होंति, तदुवरि संकिलेसुप्पत्तीदो त्ति उत्ते होदु णाम एसो णियमो ससंकिलेसाणं सोवक्कमाउआणं च, ण संकिलेसविरहिदणिरुवक्कमाउआणं तवोबलेणुप्पण्णविरियंतराइयक्खओवसमाणं तब्बलेणेव मंदीकयासादावेदणी-ओदयाणमेस णियमो, तत्थ तव्विरोहादो । एरिसी सत्ती महाणस्स तवोबलेण उप्पज्जदि त्ति कधं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । कुदो ? छम्मासेहिंतो उवरि उववासाभावे उग्गुग्गतवाणुववत्तीदो ।

तत्थ दिक्खट्ठमेगोववासं काऊण पारिय पुणो एक्कहंतरेण गच्छंतस्स किंचिणिमित्तेण छट्ठोववासो जादो । पुणो तेण छट्ठोववासेण विहरंतस्स अट्ठमोववासो जादो । एव दसमदुवालसादिक्कमेण हेट्ठा ण पदंतो जाव जीविदंतं जो विहरदि अवट्ठिदुग्गतवो णाम । एदं पि तवोविहाणं वीरियंतराइयक्खओवसमेण होदि । दोण्णं पि तवाणमुक्कट्ठफलं णिव्वुई, अवर-

....

मरण नहीं होता ।

शंका - अघातायुष्क भी छह मास तक उपवास करनेवाले ही होते हैं, क्योंकि, इसके आगे संक्लेश भाव उत्पन्न हो जाता है ?

समाधान - इसके उत्तरमें कहते हैं कि संक्लेशसहित और सोपक्रमायुष्क मुनियोंके लिये यह नियम भले ही हो, किन्तु संक्लेशभावसे रहित निरुपक्रमायुष्क और तपके बलसे उत्पन्न हुए वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे संयुक्त तथा उसके बलसे ही असातावेदनीयके उदयको मन्द कर चुकनेवाले साधुओंके लिये यह नियम नहीं है, क्योंकि, उनमें इसका विरोध है ।

शंका - तपके बलसे ऐसी शक्ति किसी महाजन अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषके उत्पन्न होती है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान - इसी सूत्रसे यह जाना जाता है, क्योंकि, छह मासोंसे ऊपर उपवासका अभाव माननेपर उग्रोग्र तप नहीं बन सकता ।

दीक्षाके लिये एक उपवास करके पारणा करे, पश्चात् एक दिनके अन्तरसे ऐसा करते हुए किसी निमित्तसे षष्ठोपवास हो गया । फिर उस षष्ठोपवाससे विहार करनेवालेके अष्टमोपवास हो गया । इस प्रकार दशम-द्वादशम आदिके क्रमसे नीचे न गिरकर जो जीवन पर्यंत विहार करता है वह अवस्थित-उग्रतप ऋद्धिका धारक कहा जाता है । यह भी तपका अनुष्ठान वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे होता है । इन दोनों ही तपोंका उत्कृष्ट

मणुक्कस्सफलं । एदेसिमुग्गतवाणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

णमो दित्ततवाणं ॥ २३ ॥

दीप्तिहेतुत्वाद्दीप्तं तपः । दीप्तं तपो येषां ते दीप्ततपसः । चउत्थ-छट्ठमादिउववासेसु कीरमाणेसु जेसिं तववणिदलद्धिमाहप्पेण सरीरतेओ पडिदिणं वड्ढदि धवलपक्खचंदस्सेव ते रिसओ दित्ततवा[1] । तेसिं ण केवलं दित्ती चेव वड्ढदि, किंतु बलो वि वड्ढदि; सरीरबल-मांस-रुहिरोवचएहि विणा सरीरदित्तिवुड्ढीए अणुववत्तीदो । तेण ण तेसिं भुत्ती वि, तक्कारणाभावादो । ण च भुक्खादुक्खुवसमणट्ठं भुंजंति, तदभावादो । तदभावो कुदोवगम्मदे ? दित्ति-बल-सरीरोवचयादो । तेसिं दित्ततवाणं जिणाणं मण-वयण-काएहि णमो ।

णमो तत्ततवाणं ॥ २४ ॥

फल मोक्ष है, अन्य अनुत्कृष्ट फल है । इन उग्रतप ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

दीप्ततप ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २३ ॥

दीप्तिका कारण होनेसे तप दीप्त कहा जाता है । दीप्त है तप जिनका वे दीप्ततप हैं । चतुर्थ व छट्ठम आदि उपवासोंके करनेपर जिनका शरीरगततेज तपजनित लब्धिके माहात्म्यसे प्रतिदिन शुक्लपक्षके चन्द्रके समान बढता जाता है, वे ऋषि दीप्ततप कहलाते हैं । उनकी केवल दीप्ति ही नहीं बढती है, किन्तु बल भी बढता है, क्योंकि, शरीरबल, मांस और रुधिरकी वृद्धिके बिना शरीरदीप्तिकी वृद्धि हो नहीं सकती । इसीलिये उनके आहार भी नहीं होता, क्योंकि, उसके कारणोंका अभाव है । यदि कहा जाय कि भूखके दुखको शान्त करनेके लिये वे भोजन करते हैं, सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि, भूखके दुखका अभाव है ।

शंका - उसका अभाव कहांसे जाना जाता है ?

समाधान - दीप्ति, बल और शरीरकी वृद्धिसे वह जाना जाता है ।

उन दीप्ततप ऋद्धिधारक जिनोंको मन, वचन और कायसे नमस्कार हो ।

तप्ततप ऋद्धिधारकोंको नमस्कार हो ॥ २४ ॥

---

१ बहुविहउववासेहिं रविसमवड्ढंतकायकिरणोघो । काय-मण-वयणबलिणो जीए सा दित्ततवरिद्धी ॥ ति. प. ४-१०५२, महोपवासकरणेऽपि प्रवर्धमानकाय-वाङ्मानसबलः विगन्धरहितवदनाः पद्मोत्पलादिसुरभिनिश्वासाः अप्रच्युतमहादीप्तिशरीराः दीप्ततपसः । त. रा. ३, ३६, २.

तप्तं दग्धं विनाशितं मूत्र-पुरीष-शुक्रादि येन तपसा तदुपचारेण तप्ततपः । तप्तं तपो येषां ते तप्ततपसः । जेसिं भुत्तचउव्विहाहारस्स तत्तलोहपिंडागिरिसिदपाणियस्सेव णीहारो णत्थि ते तत्ततवा[१] । एदाए रिद्धीए सहियाणं तत्ततवाणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

णमो महातवाणं ।। २५ ।।

अणिमादिअट्ठगुणोवेदो जलचारणादिअट्ठविहचारणगुणालंकरियो फुरंतसरीरप्पहो दुविहअक्खीणलद्धिजुत्तो सव्वोसहिसरूवो पाणिपत्तणिवदिदसव्वाहारे अमियसादसरूवेण पल्लट्टावणसमत्थो सयलिंदेहिंतो वि अणंतबलो आसी-दिट्ठिविसलद्धिसमण्णिओ तत्ततवो सयलविज्जाहरो मदि-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणेहि मुणिदतिहुवणवावारो मुणी महातवो[२] णाम । कस्मात् ? महत्त्वहेतुस्तपोविशेषो महानुच्यते उपचारेण, स येषां ते महातपसः इति सिद्धत्वात् । अथवा

....

जिस तपके द्वारा मूत्र, मल और शुक्रादि तप्त अर्थात् दग्ध व विनष्ट कर दिया जाता है वे उपचारसे तप्ततप कहलाते हैं । तप्त हो गया है तप जिनका वे तप्त तपवाले हैं । जिनके ग्रहण किये हुए चार प्रकारके आहारका तपे हुए लोहपिण्ड द्वारा आकृष्ट पानीके समान नीहार नहीं होता वे तप्ततप ऋद्धिके धारक जिन हैं । इस ऋद्धिसे सहित तप्ततपवाले जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है ।

महातप ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो ।। २५ ।।

जो अणिमादि आठ गुणोंसे सहित है, जलचारणादि आठ प्रकारके चारणगुणोंसे अलंकृत है, प्रकाशमान शरीरप्रभासे संयुक्त है, दो प्रकारकी अक्षीण ऋद्धिसे युक्त है, सर्वौषधि स्वरूप है, पाणिपात्रमें गिरे हुए सब आहारोंको अमृतस्वरूपसे पलटानेमें समर्थ है, समस्त इन्द्रोंसे भी अनन्तगुणे बलके धारक है, आशीर्विष और दृष्टिविष लब्धियोंसे समन्वित है, तप्ततप ऋद्धिसे संयुक्त है; समस्त विद्याओंका धारक है; मति, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञानोंसे तीनों लोकके व्यापारको जाननेवाला है, वह मुनि महातप ऋद्धिका धारक है । कारण कि महत्त्वके हेतुभूत तपविशेषको उपचारसे महान् कहा जाता है । वह जिनके होता है वे महातप ऋषि हैं, ऐसा सिद्ध है । अथवा,

....

१ तत्ते लोहकडाहे पडिअंबुकणं व जीए भुत्तण्णं । झिज्जदि धाऊहिं सा णियझाणाएहिं तत्ततवा ।। ति. प. ४-१०५३. तप्तायसकटाहपतितजलकणवदाशुशुष्काल्पाहारतया मल-रुधिरादिभावपरिणामविरहिताभ्यवहाराः तप्ततपसः । त. रा. ३, ३६, २.

२ मंदरपंतिप्पमुहे महोववासे करेदि सव्वे वि । चउसण्णाणबलेणं जीए सा महातवा रिद्धी ।। ति. प. ४-१०५४. सिंहनिः क्रीडितादिमहोपवासानुष्ठानपरायणयतयो महातपसः । त. रा. ३, ३६, २.

महसां हेतुः तप उपचारेण महा इति भवति । सेसं सुगमं । एदेसिं महातवाणं मणवयणकायेहि णमोक्कारं करेमि ।

णमो घोरतवाणं ।। २६ ।।

उववासेसु छम्मासोववासो, ओमोदरियासु एक्ककवलो, उत्तिपरिसंखासु चच्चरे गोयराभिग्गहो, रसपरिच्चाग्गेसु उण्हजलजुदोयणभोयणं, विवित्तसयणासणेसु वयवग्घ-तरच्छ-छवल्लादिसावयसेवियासु सज्झ-विंज्झाडईसु णिवासो, कायकिलेसेसु तिव्वहिमवालादावणिव-दंतविसएसु अब्भोवासरुक्खमूलादावणजोगग्गहणं । एवमब्भंतरतवेसु वि उक्कट्ठतवपरूवणा कायव्वा । एसो बारहविहो वि तवो कायरजणाणं सज्झसजणणो त्ति घोरत्तवो । सो जेसिं ते घोवत्तवा । बारसव्विहत्तउक्कट्ठवट्ठाए वट्टमाणा घोरतवा[1] त्ति भणिदं होदि । एसा वि तवजणिदरिद्धी चेव, अण्णहा एवंविहाचरणाणुव्वत्तीदो । एदेसिं घोरतवाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

....

महस् अर्थात् तेजोंका हेतुभूत जो तप है वह उपचारसे महा होता है । शेष सुगम है । इन महातप ऋद्धिधारकों मन, वचन व कायसे नमस्कार करता हूं ।

घोरतप ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ।। २६ ।।

उपवासोंमें छह मासका उपवास, अवमोदर्य तपोंमें एक ग्रास, वृत्तिपरिसंख्याओंमें चत्वर अर्थात् चौराहेमें भिक्षाकी प्रतिज्ञा, रसपरित्यागोंमें उष्ण जल युक्त ओदनका भोजन; विविक्तशयासनोंमें वृक, व्याघ्र, तरक्ष, छवल्ल आदि श्वापद अर्थात् हिंस्र जीवोंसे सेवित सह्य और बिन्ध्य आदि अटवियोंमें निवास, कायक्लेशोंमें जहां तीव्र ठंडक हो तथा तीव्र गर्मी पडती हो ऐसे प्रदेशोंमें तथा खुले आकाश अथवा वृक्षमूलमें आतापन योग ग्रहण करना । इसी प्रकार अभ्यन्तर तपोंमें भी उत्कृष्ट तपकी प्ररूपणा करना चाहिये । यह बारह प्रकार ही तप कायर जनोंको भयोत्पादक है, इसी कारण घोर तप कहलाता है । वह तप जिनके होता है वे घोर तप ऋद्धिके धारक हैं । बारह प्रकारके तपोंकी उत्कृष्ट अवस्थामें वर्तमान साधु घोरतप कहलाते हैं, यह तात्पर्य है । यह भी तपजनित ऋद्धि ही है, क्योंकि, विना तपके इस प्रकारका आचरण बन नहीं सकता । इन घोरतप ऋषीश्वरोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है ।

....

१ जलसूलप्पमुहाणं रोगेणच्चंतपीडिअंगा वि । साहंति दुद्धरतवं जी एसा घोरतवरिद्धी ।। ति. प. ४-१०५५. वात-पित्त-श्लेष्म-सन्निपातसमुद्भूतज्वर-कास-श्वासाक्षि-शूल-कुष्ठ-प्रमेहादिविविधरोगसंतापितदेहा अप्यप्रच्युतानशन-कायक्लेशादितपसो भीमस्मशानाद्रिमस्तकगुहा-दरी-कंदर-शून्यग्रामादिषु प्रदुष्टयक्ष-राक्षस-पिशाचप्रवृत्तवेतालरूपविकारेषु परुषशिवारुतानुपरसिंह-व्याघ्रादि-व्याल मृगभीषणस्वन-पौरचौरादिप्रचरितेष्वभिरुचितावासाश्च घोरतपसः । त. रा. ३, ३६, २.

णमो घोरपरक्कमाणं ।। २७ ।।

तिहुवणुवसंहण-महीवीढगसरण-सयलसायरजलसोसण-जलग्गिसिलापव्वदादिवरिसणसत्ती घोरपरक्कमो णाम । घोरो परक्कमो जेसिं जिणाणं ते घोरपरक्कमा । तेसिं णमो इदि भणिदं होदि। ण कूरकम्माणं असुराणं णमोक्कारो पसज्जदे, जिणाणुवुत्तीदो ।

णमो घोरगुणाणं ।। २८ ।।

घोरा रउद्दा गुणा जेसिं ते घोरगुणा । कधं चउरासीदिलक्खगुणाणं घोरत्तं ? घोरकज्जकारिसत्तिजणणादो । तेसिं घोरगुणाणं णमो इदि उत्तं होदि । णादिप्पसंगो, जिणाणुवुत्तीदो । ण गुण-परक्कमाणमेयत्तं, गुणजणिदसत्तीए परक्कमववएसादो ।

....

घोरपराक्रम ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो ।। २७ ।।

तीनों लोकोंका उपसंहार करने, पृथिवीतलको निगलने, समस्त समुद्रके जलको सुखाने; तथा जल, अग्नि एवं शिलापर्वतादिके बरसानेकी शक्तिका नाम घोरपराक्रम है । घोर है पराक्रम जिन जिनोंका वे घोरपराक्रम कहलाते हैं । उनको नमस्कार हो, यह अभिप्राय है । यहां जिन शब्दकी अनुवृत्ति आनेसे क्रूर कर्म करनेवाले असुरोंको नमस्कार करनेका प्रसंग नहीं आता, क्योंकि, इस सूत्रमें जिन पदकी अनुवृत्ति हो जाती है ।

घोरगुण जिनोंको नमस्कार हो ।। २८ ।।

घोर अर्थात् रौद्र हैं गुण जिनके वे घोरगुण कहे जाते हैं ।

शंका - चौरासी लाख गुणोंके घोरत्व कैसे सम्भव है ?

समाधान - घोर कार्यकारी शक्तिको उत्पन्न करनेके कारण उनके घोरत्व सम्भव है ।

उन घोरगुण जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है । जिन शब्दकी अनिवृत्ति होनेसे यहां अतिप्रसंग भी नहीं आता । गुण और पराक्रमके एकत्व नहीं है, क्योंकि, गुणसे उत्पन्न हुई शक्तिकी पराक्रम संज्ञा है ।

....

१ णिरुवमवड्ढंततवा तिहुवणसंहरणकरणसत्तिजुदा । कंटय-सलग्गि-पव्वय-धूमुक्कापहुदिवरिसणसमत्था ।। सहस त्ति सयलसायरसलिलुप्पीलस्स सोसणसमत्था । जायंति जीए मुणिणो घोरपरक्कमतव त्ति सा रिद्धी ।। ति. प. ४, १०५६-१०५७. त एव गृहीततपोयोगवर्धनपरा घोरपराक्रमाः । त. रा. ३, ३६, २.

णमोऽघोरगुणबंभचारीणं ।। २९ ।।

ब्रह्म चारित्रं पंचव्रत-समिति-त्रिगुप्त्यात्मकम्, शान्तिपुष्टिहेतुत्वात् । अघोरा शान्ता गुणा यस्मिन् तदघोरगुणं ब्रह्म चरन्तीति अघोरगुणब्रह्मचारिणः । जेसिं तवोमाहप्पेण डमरीदि-मारि-दुब्भिक्ख-वइर-कलह-वध-बंधण-रोहादिपसमणसत्ती समुप्पण्णा ते अघोरगुणब्रह्मचारिणो[1] त्ति उत्तं होदि । तेसिं अघोरगुणबंभयारीणं णमो इदि उत्तं होदि । एत्थ अकारो किण्ण सुणिज्जदे ? संधिणिद्देसादो । दिट्ठिअमियाणमघोरगुणबंभयारीणं च को विसेसो ? उवजोगसहेज्जदिट्ठीए ट्ठिदलद्धिजुत्ता दिट्ठिविसा णाम । अघोरगुणबंभयारीणं पुण लद्धी असंखेज्जा सव्वंगगया, एदेसिमंगलग्गवादे वि सयलोवद्दवविणासणसत्तिदंसणादो । तदो अत्थि भेदो ।

....

अघोरगुणब्रह्मचारी जिनोंको नमस्कार हो ॥ २९ ॥

ब्रह्मका अर्थ पांच व्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति स्वरूप चारित्र है, क्योंकि, वह शान्तिके पोषणका हेतु है । अघोर अर्थात् शान्त है गुण जिसमें वह अघोरगुण है, अघोरगुण ब्रह्मका आचरण करनेवाले अघोरगुणब्रह्मचारी कहलाते हैं । जिनके तपके प्रभावसे डमरी ईति, रोग, दुर्भिक्ष, वैर, कलह, वध, बन्धन और रोध आदिको शान्त करनेकी शक्ति उत्पन्न हुई है वे अघोरगुणब्रह्मचारी हैं, यह तात्पर्य है । उन अघोरगुणब्रह्मचारी जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका - 'णमो घोरगुणबंभचारीणं' इस सूत्रमें अघोर शब्दका अकार क्यों नहीं सुना जाता ?

समाधान - सन्धियुक्त निर्देश होनेसे उक्त अकारका यहां श्रवण नहीं होता ।

शंका - दृष्टि-अमृत और अघोरगुणब्रह्मचारीमें क्या भेद है ?

समाधान - उपयोगकी सहायता युक्त दृष्टिमें स्थित लब्धिसे संयुक्त दृष्टिविष कहलाते हैं । किन्तु अघोरगुणब्रह्मचारियोंकी लब्धियां सर्वांगगत असंख्यात हैं । इनके शरीरसे स्पृष्ट वायुमें भी समस्त उपद्रवोंको नष्ट करनेकी शक्ति देखी जाती है । इस कारण दोनोंमें भेद है ।

....

१ जीए ण होंति मुणिणो खेत्तम्मि वि चोरपहुदिबाधाओ । काल-महाजुद्धादी रिद्धी साघोरबम्हचारित्ता । उक्कस्सक्खउवसमे चारित्तावरणमोहकम्मस्स । जा दुस्सिमणं णाइस रिद्धी साघोरबम्हचारित्ता ॥ अहवा-सव्व-गुणेहिं अघोरं महेसिणो बम्हसद्दचारित्तं । विप्फुरिदाए जीए रिद्धी साघोरबम्हचारित्ता ॥ ति. प. ४, १०५८-१०६०. चिरोषितास्खलितब्रह्मचर्यवासाः प्रकृष्टचारित्रमोहनीयक्षयोपशमात् प्रणष्टदुस्वप्नाः घोरब्रह्मचारिणः त. रा. ३, ३६, २.

णवरि असुहलद्धीणं पउत्ती लद्धिमंताणमिच्छावसवट्टणी । सुहाणं लद्धीणं पउत्ती पुण दोहि वि पयारेहि संभवदि, तदिच्छाए विणा वि पउत्तिदंसणादो ।

णमो आमोसहिपत्ताणं ।। ३० ।।

आमर्षः औषधत्वं प्राप्तो येषां ते आमर्षौषधप्राप्ताः । सुत्ते सकारो किण्ण सुणिज्जदि ? 'आई-मज्झंतवण्णसर-लोवो[1] त्ति लक्खणादो । ओसहि त्ति इकारो कत्तो ? 'एए छच्च समा[2]' त्ति

....

विशेष इतना है कि अशुभ लब्धियोंकी प्रवृत्ति लब्धियुक्त जीवोंकी इच्छाके वशसे होती है । किन्तु शुभ लब्धियोंकी प्रवृत्ति दोनों ही प्रकारोंसे सम्भव है, क्योंकि, उनकी इच्छाके विना भी उक्त लब्धियोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है ।

आमर्षौषधिप्राप्त ऋषियोंको नमस्कार हो ।। ३० ।।

जिनका आमर्ष अर्थात् स्पर्श औषधपनेको प्राप्त है वे आमर्षौषधि प्राप्त हैं ।

शंका - सूत्रमें सकार क्यों नहीं सुना जाता है ?

समाधान - (प्राकृतमें) किन्हीं पदोंके आदि, मध्य व अन्तके वर्ण और स्वरका लोप हो जाता है, इस व्याकरणके नियमसे सकारका लोप हो गया, अतः वह नहीं सुना जाता ।

शंका - औषधि में इकार कहांसे आया ?

समाधान - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ये छह स्वर समान हैं (तथा ए और ओ ये दो सन्ध्यक्षर, ये आठों स्वर विना विरोधके एक दूसरेके स्थानमें आदेशको प्राप्त होते हैं) । इस व्याकरणके नियमसे 'औषधि' यहां अकारके स्थानमें इकार हो गया है ।

विशेषार्थ - यद्यपि संस्कृतमें औषधि और औषध दोनों शब्द हैं, तथापि यहां केवल औषधिसमूह रूप औषध शब्दसे अभिप्राय होनेके कारण उक्त प्रकार समाधान किया गया है ।

....

१ कीरइ पयाण काण वि आई-मज्झंतवण्णसरलोवो-(जयध. भाग १, पृ. ३२६).

२ एए छच्च समाणा दोण्णि अ संज्झक्खरा सरा अट्ठ । अण्णोण्णस्सविरोहा उवेंति सव्वे समाएसं ।। (जयध. १, पृ. ३२६).

लक्खणादो । तवोमाहप्पेण जेसिं फासो सयलोसहसरूवं पत्तो तेसिमामोसहिपत्ता[1] त्ति सण्णा । एवंविहाणमामोसहिपत्ताणं णमो इदि भणिदं होदि । ण च एदेसिमघोरगुणबंभयारीणं अंतब्भावो, एदेसिं वाहिविणासणे चेव सत्तिदंसणादो ।

णमो खेलोसहिपत्ताणं ।। ३१ ।।

सेंभ-लाला-सिंघाण-विप्पुसादीणं खेलो त्ति सण्णा । ऐसो खेलो ओसहित्तं पत्तो जेसिं ते खेलोसहिपत्ता[2] । तेसिं खेलोसहिपत्ताणं जिणाणं णमो ।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं ।। ३२ ।।

जल्लो अंगमलो बाहिरो । सो ओसहित्तं पत्तो जेसिं तवोबलेण ते जल्लोसहि -

....

तपके प्रभावसे जिनका स्पर्श समस्त औषधोंके स्वरूपको प्राप्त हो गया है उनकी आमर्षौषधिप्राप्त ऐसी संज्ञा है । इस प्रकारके आमर्षौषधिप्राप्त ऋषियोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है । इनका अघोरगुणब्रह्मचारियोंमें अन्तर्भाव नहीं होता, क्योंकि, इनके केवल व्याधिके नष्ट करनेमें ही शक्ति देखी जाती है ।

खेलौषधिप्राप्त ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३१ ॥

श्लेष्म, लार, सिंहाण अर्थात् नासिकामल और विप्रुष आदिकी खेल संज्ञा है । जिनका यह खेल औषधित्वको प्राप्त हो गया है वे खेलौषधिप्राप्त ऋषि हैं । उन खेलौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।

जल्लौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३२ ॥

बाह्य अंगमल जल्ल कहलाता है । वह तपके प्रभावसे जिनके औषधिपनेको प्राप्त

....

१ रिसिकर-चरणादीणं अल्लियमेत्तम्मि जीए पासम्मि । जीवा होंति णिरोगा साअम्मरिसोसही रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०६८. आमर्शनः संस्पर्शः, यदीयहस्त-पाद्यामर्श औषधिप्राप्तो यैस्ते आमर्शौषधिप्राप्ताः त. रा. ३, ३६, २. संफरिसणमामोसो-संस्पर्शनमामार्शः स एवौषधिर्यस्यासावामर्शौषधिः । करादिसंस्पर्शमात्रादेव विविधव्याधिव्यपनयनसमर्थो लब्धि-लब्धिमतोरभेदोपचारात् साधुरेवामर्शौषधिरित्यर्थः । इदमत्र तात्पर्यम् यत्प्रभावात् स्वहस्त-पाद्यवयवपरामर्शमात्रेणैवात्मनः परस्य वा सर्वेऽपि रोगाः प्रणश्यन्ति सा आमर्शौषधिः । प्रवचनसारोद्धार १४९६ (वृत्ति)

२ जीए लाला-सेमच्छीमल-सिंहाणआदिआ सिग्घं । जीवाण रोगहरणा स च्चिय खेलोसही रिद्धी । ति. प. ४-१०६९. क्षेलो निष्ठीवनमौषधिर्येषां ते क्षेलौषधिप्राप्ताः । त. रा. ३, ३६, २. खेलः श्लेष्मा, जल्लो मलः कर्ण-वदन-नासिका-नयन-जिह्वा-समुद्भव शरीरसम्भवश्च, तौ खेल-जल्लौ यत्प्रभावतः । सर्वरोगापहारकौ सुरभी च भवतः सा क्रमेण खेलौषधिर्जल्लोषधिश्च । प्रवचनसारोद्धार १४९६ (वृत्ति)

पत्ता[1] । तेसिं जल्लोसहिपत्ताणं जिणाणं णमो ।

णमो विट्ठोसहिपत्ताणं ।। ३३ ।।

विट्ठसद्दो जेण देसामासिओ तेण मुत्त-विट्ठा-सुक्काणं गहणं । एदे ओसहित्तं पत्ता जेसिं ते विट्ठोसहिपत्ता[2], तेसिं दिट्ठोसहिपत्ताणं जिणाणं णमो ।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।। ३४ ।।

रस-रुहिर-मांस-मेदट्ठि-मज्ज-सुक्क-पुप्फस-खरीस-कालेज्ज-मुत्त-पित्तंतुच्चारादओ सव्वे ओसहित्तं पत्ता जेसिं ते सव्वोसहिपत्ता[3] । तेसिं सव्वोससहिपत्ताणं णमो । एत्थ जेत्तियाओ

....

हो गया है वे जल्लोषधिप्राप्त जिन हैं । उन जल्लौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।

विष्ठौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।। ३३ ।।

विंष्ठा शब्द चूंकि देशामर्शक है, अतएव उससे मूत्र, मल और शुक्रका ग्रहण होता है । ये जिनके औषधित्वको प्राप्त हो गये हैं वे विष्ठौषधिप्राप्त जिन हैं । उन विष्ठौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।

सर्वौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।। ३४ ।।

रस, रुधिर, मांस, मेदा, अत्थि, मज्जा, शुक्र, फुप्फुस, खरीष, कालेय, मूत्र, पित्त, अंतडी, उच्चार अर्थात् मल आदिक सब जिनके औषधिपनेको प्राप्त हो गये हैं वे सर्वौषधिप्राप्त जिन हैं । उन सर्वौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो । यहां लोकमें जितनी

....

१ सेयजलो अगंरयं जल्लं भण्णे त्ति जीए तेणावि । जीवाण रोगहरणं रिद्धी जल्लोसही णामा । ति. प. ४-१०७०. स्वेदालंबनो रजोनिचयो जल्लः, स औषधिं प्राप्तो येषां ते जल्लौषधिप्राप्ताः । त. रा. ३, ३६, २.

२ मुत्त पुरीसो वि पुढं दारुणबहुजीववायसंहरणा । जीए महामुणीणं विप्पोसहि णाम सा रिद्धी ।। ति. प. ४-१०७२. विडुच्चार औषधिर्येषां ते विडौषधिप्राप्ताः । त. रा. ३, ३६, २. मुत्त-पुरीसाण विप्पुसो वावि (वयवा) । अन्ने विडित्ति विट्ठा भासंति पइत्ति पासवणं ।। 'मुत्त-पुरीसाण विप्पुसो वावि' (ऽवयवा) त्ति मूत्र-पुरीषयोर्विप्रुषः-अवयवाः इह विप्रुडुच्यते 'विप्पुसो वाऽवि' त्ति पाठस्तु ग्रन्थान्तरेष्वदृष्टत्वादुपेक्षितः, अथ चावश्यमेतद्व्याख्यानेन प्रयोजनं तदेत्थं व्याख्येयम्-वा शब्दः समुच्चये, अपि-शब्द एवकारार्थो भिन्नक्रमश्च, ततो मूत्रपुरीषयोरेवावयवा इह विप्रुडुच्यते इति । अन्ये तु भाषन्ते-विडिति विष्ठा, पत्ति प्रश्रवणं मूत्रम् सूचकत्वात्सूत्रस्येतिXXXयन्माहात्म्यान्मूत्र-पुरीषावयवमात्रमपि रोगराशिप्रणाशाय संपद्यते सुरभि च सा विप्रुडौषधि । प्रवचनसारोद्धार १४९६ (वृत्ति).

३ जीए पस्सजलाणिल-रोम-णहादीणि वाहिहरणाणि । दुक्करतवजुत्ताणं रिद्धी सव्वोसही णामा ।। ति. प. ४-१०७३. अंग-प्रत्यंग-नख-दन्त-केशादिरवयवः तत्संस्पर्शी वाय्वादिस्सर्वः औषधिप्राप्तो येषां ते सर्वौषधि-प्राप्ताः । त. रा. ३, ३६, २. तथा यन्माहात्म्यतो विण्मूत्र-केश-नखादयश्च सर्वेऽवयवा समुदिता सर्वत्र भेषजीभावं सौरभं च भजन्ते सा सर्वौषधिरिति । प्रवचनसारोद्धारवृत्ति १४९६-१४९७.

वाहीओ लोए अत्थि ताओ सव्वाओ ठवेदूण आमास-खेल-जल्ल-विट्ठ-सव्वोसहीणमेग-संजोगादि-भंगा णाणाकालजिणे अस्सिदूण परूवेदव्वा, विचित्तचरित्तेण लद्धीणं वइचित्तियाविरोहादो ।

णमो मणबलीणं ।। ३५ ।।

बारहंगुद्दिट्ठतिकालगोयराणंतट्ठ-वंजण-पज्जायाइण्णछद्दव्वाणि णिरंतरं चिंतिदे वि खेया-भावो मणबलो । एसो मणबलो जेसिमत्थि ते मणबलिणो । एसो वि मणबलो लद्धी, विसिट्ठ-तवोबलेणुप्पज्जमाणत्तादो । कधमण्णहा बारहंगट्ठो मुहुत्तेणेक्केण बहूहि वासेहि बुद्धिगोयरमावण्णो चित्तखेयं ण कुणेज्ज ? तेसिं मणबलीणं णमो[१] ।

णमो वचिबलीणं ।। ३६ ।।

बारसंगाणं बहुवारं पडिवाडिं काऊण वि जो खेयं ण गच्छइ सो वचिबली

....

व्याधियां हैं उन सबको स्थापित कर आमर्षौषधि, खेलौषधि, जल्लौषधि, विष्ठौषधि और सर्वौषधिके एकसंयोगादि रुप भंगोंकी नाना काल सम्बन्धी जिनोंका आश्रय करके प्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, विचित्र चरित्रसे लब्धियोंकी विचित्रतामें कोई विरोध नहीं है ।

मनबल ऋद्धियुक्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३५ ॥

बारह अंगोंमें निर्दिष्ट त्रिकालविषयक अनन्त अर्थ व व्यञ्जन पर्यायोंसे व्याप्त छह द्रव्योंका निरन्तर चिन्तन करनेपर भी खेदको प्राप्त न होना मनबल है । यह मनबल जिनके है वे मनबली कहलाते हैं । यह मनबल भी लब्धि है, क्योंकि, वह विशिष्ट तपके प्रभावसे उत्पन्न होता है । अन्यथा बहुत वर्षोंमें बुद्धिगोचर होनेवाला बारह अंगोंका अर्थ एक मुहूर्तमें चित्तखेदको कैसे न करेगा ? अर्थात् करेगा ही । उन मनबली ऋषियोंको नमस्कार हो ।

बचनबली ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३६ ॥

बारह अंगोंका बहुत वार प्रतिवाचन करके भी जो खेदको नहीं प्राप्त होता है,

....

१ बलरिद्धी तिविहप्पा मण-वयण-सरीरयाण भेएण । सुदणाणावरणाए पगडीए वीरयंतरायाए ॥ उक्कस्सक्खउवसमे मुहुत्तमेत्तंतरम्मि सयलसुदं । चिंतइ जाणइ जीए सा रिद्धी मणबला णामा । ति. प. ४.१०६०-१०६१, तत्र मनःश्रुतावरण-वीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षे सत्यन्तर्मुहूर्ते सकल श्रुतार्थचिन्तनेऽवदाता मनोबलिनः । त. रा. ३, ३६, २.

तवोमाहप्पुप्पाइदवयणबलो वचिबली[1] त्ति उत्तं होदि । तेसिं विसुद्धमण-वयण-काएहि णमो ।

णमो कायबलीणं ।। ३७ ।।

तिहुवणं करंगुलियाए उद्धरिदूण अण्णत्थ ट्ठवणक्खमो कायबली[2] णाम । एसा वि कायसत्ती चारित्तविसेसादो चेव उप्पज्जदे, अण्णहाणुवलंभादो । एदेसिं कायबलीणं णमो ।

णमो खीरसवीणं ।। ३८ ।।

खीरं दुद्धं । सविसादो खीरस्स सवी खीरसवी । पाणिपत्तणिवदिदासेसाहाराणं

....

वह वचनबली साधु है । तपके माहात्म्यसे जिसने वचनबलको उत्पन्न किया है वह वचनबली है, यह इसका अभिप्राय है । उनको विशुद्ध मन, वचन व कायसे नमस्कार हो ।

कायबली ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३७ ॥

तीनों लोकोंको हाथकी अंगुलीसे ऊपर उठाकर अन्यत्र रखनेमें जो समर्थ है वह कायबली है । कायशक्ति चारित्रविशेषसे ही उत्पन्न होती है, क्योंकि, उसके बिना वह पायी नहीं जाती । इन कायबल ऋद्धिधारकोंको नमस्कार हो ।

क्षीरस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३८ ॥

क्षीरका अर्थ दूध है । विषसहित वस्तुसे भी क्षीरको बहानेवाला क्षीरस्रवी कहलाता है । हाथ रूपी पात्रमें गिरे हुए सब आहारोंको क्षीर स्वरूप उत्पन्न करनेवाली शक्ति

....

१ जिब्भिंदिय-णोइंदिय-सुदणाणावरण-विरियविग्घाणं । उक्कस्सखओवसमं मुहुत्तमेत्तंतरम्मि मुणी ॥ सयलंपि सुदं जाणइ उच्चारइ जीए विप्फुरंतीए । असमो अहिकंठो सा रिद्धी उ णेया वयणबलणामा ॥ ति. प. ४, १०६३-१०६४. मनोजिह्वा-श्रुतावरण-वीर्यान्तरायक्षयोपशमातिशये सत्यन्तमुहूर्ते सकलश्रुतोच्चारणसमर्थाः सततमुच्चैरुच्चारणे सत्यपि श्रमविरहिता अहीनकंठाश्च वाग्बलिनः । त. रा. ३, ३६, २.

२ उक्कस्सक्खउवसमे पविसेसे विरियविग्घपगडीए । मास-चउमासपमुहे काउस्सग्गे वि समहीणा ॥ उच्चट्ठिय तेल्लोक्कं झत्ति कणिट्ठंगुलीए अण्णत्थं । थविदुं जीए समत्था सा रिद्धी कायबलणामा ॥ ति. प. ४, १०६५-१०६६. वीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूतासाधारणकायबलत्वान्मासिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिकादिप्रतिमायोगधारणेऽपि श्रम-क्लमविरहिताः कायबलिनः । त. रा. ३, ३६, २.

खीरसादुप्पायणसत्ती वि कारणे कज्जोवयारादो खीरसवी[1] णाम । कधं रसंतरेसु ट्ठियदव्वाणं तक्खणादेव खीरासादसरूवणे परिणामो ? ण, अमियसमुद्दम्मि णिवदिदविसस्सेव पंचमहव्वय-समिइ-तिगुत्तिकलावघडिदंजलिउदणिवदियाणं तदविरोहादो । सा जेसिमत्थि ते खीरसविणो । तेसिं णमो ।

णमो सप्पिसवीणं ।। ३९ ।।

सर्पिर्घृतं । जेसिं तवोमाहप्पेण अंजलिउडणिवदिदासेसाहारा घदासादसरूवेण परिणमंति ते सप्पिसविणा[2] जिणा । तेसिं णमो ।

णमो महुसवीणं ।। ४० ।।

....

भी कारणमें कार्यके उपचारसे क्षीरस्रवी कही जाती है ।

शंका - अन्य रसोंमें स्थित द्रव्योंका तत्काल ही क्षीर स्वरूपसे परिणमन कैसे सम्भव है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार अमृतसमुद्रमें गिरे हुए विषका अमृत रूप परिणमन होनेमें कोई विरोध नहीं है, उसी प्रकार पांच महाव्रत, पांच समिति व तीन गुप्तियोंके समूहसे घटित अंजलिपुटमें गिरे हुए सब आहारोंका क्षीर स्वरूप परिणमन करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

वह शक्ति जिनके है वे क्षीरस्रवी कहलाते हैं । उनको नमस्कार हो ।

सर्पिस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ।। ३९ ।।

सर्पिष् शब्दका अर्थ घृत है । जिनके तपके प्रभावसे अंजलिपुटमें गिरे हुए सब आहार घृत स्वरूपसे परिणमते हैं वे सर्पिस्रवी जिन हैं । उनको नमस्कार हो ।

मधुस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ।। ४० ।।

....

१ करयलणिक्खित्ताणिं रुक्खाहारादियाणि तक्कालं । पावंति खीरभावं जीए खीरोसवी रिद्धी ।। ति. प. ४-१०८१. विरसमप्यशनं येषां पाणिपुटविक्षिप्तं (निक्षिप्तं) क्षीररसगुणपरिणामि जायते, येषां वा वचनानि क्षीरवत् क्षीणानां संतर्पकाणि भवन्ति ते क्षीरास्रविणः ।। त. रा. ३, ३६, २.

२ रिसिपाणितलणिखित्तं रुक्खाहारादियं पि खणमेत्ते । पावेदि सप्पिरूवं जीए सा सप्पियासवी रिद्धी । अहवा दुक्खप्पमुहं [illegible]वणेण मुणिंददिव्ववयणस्स । उवसामदि जीवाणं एसा सप्पियासवी रिद्धी ।। ति. प. ४, १०८६-८७. येषां पाणिपात्रगतमन्नं रुक्षमपि सर्पीरसवीर्यविपाकानाप्नोति सर्पिरिव वा येषां भाषितानि प्राणिनां संतर्पकाणि भवन्ति ते सर्पिरास्रविणः ।। त. रा. ३, ३६, २.